शैलेश मटियानी: अर्धांगिनी और दाम्पत्य-प्रेम

अनुजा कुमारी
शोधार्थी
भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय मधेपुरा, बिहार

शैलेश मटियानी हिन्दी साहित्य में कथाकार के रूप में एक जाना-पहचाना नाम है। प्रेमचंद के बाद अगर किसी ने विपुल मात्रा और एक रचनात्मक वैभव के साथ साहित्य को अपनी सृजनात्मकता से समृद्ध किया, तो वो शैलेश मटियानी ही हैं। लगभग 30 कहानी संग्रह, लगभग 30 उपन्यास, 7 लोककथा संग्रह, 16 बाल साहित्य की पुस्तकें, 2 गाथा, 3 संस्मरण, वैचारिक निबंध की 13 पुस्तकें शैलेश मटियानी की लिखी हुई मिलती हैं। अगर इनको सिर्फ गिन लिया जाय तो सौ से ऊपर की संख्या होती है किताबों की। इतना विपुल लेखन करनेवाला साहित्यकार सिर्फ संख्या में ही नहीं बल्कि साहित्यिक और रचनात्मक मानदण्डों पर भी एक से एक रचनाएँ देता रहा। शैलेश मटियानी ने अपनी रचनाओं से हिन्दी कथा साहित्य को समृद्ध किया। ऐसी विपुल लेखन की प्रवृति बांग्ला भाषा के लेखकों में देखने को मिलती है। लेखन की यह विपुलता अक्सर पुनरावृत्ति और एकरसता का सबब बनती है। पर शैलेश मटियानी निरंतर विकसित होते गए, विषय-वैविध्य को बरकरार रखते हुए। तभी तो उनके निधन के बाद उनकी प्रतिभा और क्षमता पर बात करते हुए राजेंद्र यादव एक साक्षात्कार में कहते हैं – "वे (मटियानी) उन कहानीकारों में हैं जिनके पास सबसे अधिक संख्या में, 10-12 की संख्या में ए-वन कहानियाँ हैं। प्रेमचंद सहित सबके पास 5-6 से ज्यादा टॉप की कहानियाँ नहीं हैं जो कहानी अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विश्वस्तर पर खड़ी हो सके। मेरे पास 2-4, भारती और राकेश के पास दो चार होंगी। बाकी की सब एक मिनिमम स्टैंडर्ड हैं परंतु जिसे आउटस्टैंडिंग कहानी कहते हैं वो नहीं है। उनके पास सबसे ज्यादा हैं। हमलोगों में सबसे ज्यादा प्रतिभाशाली आदमी। उनमें अनुभव की आग और तड़प है। हमलोग कहीं न कहीं बुकिश हो जाते हैं। वे जिंदगी से उठाई गई कहानियाँ लिखते थे।" **1** रचनात्मकता, संवेदना और वैचारिकता के साथ विपरीत परिस्थितियों में अंत तक रचनारत रहते हुए इतना विपुल गद्य लेखन करनेवाले विलक्षण प्रतिभा के धनी शैलेश मटियानी को कैलाश चन्द्र पंत उचित ही "गद्य-पुरुष"**2** कहते हैं।

शैलेश मटियानी की रचनाओं में 'अनुभव की आग और तड़प' आकाश या हवा से नहीं आयी, बल्कि काँटों भरा एक संघर्षपूर्ण जीवन उन्होंने खुद ही जिया। जिन परिस्थितियों में एक साधारण आदमी को मौत ज्यादा आसान लग सकती है उन्हीं परिस्थितियों में मौत के बारे में सोचकर भी बार-बार जीवन की तरफ लौटते रहे हैं शैलेश मटियानी। उनके भीतर का लेखक और लेखक बनने की उनकी चाह – ये दोनों बार-बार जीवन के प्रति उनकी श्रद्धा का पुनराविष्कार करते रहे हैं।

शैलेश मटियानी नाम के इस अद्‌भुत और विलक्षण कथाकार का जन्म तत्कालीन उत्तर प्रदेश (वर्तमान उत्तराखंड) के अल्मोड़ा जिला के बाड़ेछीना में 24 अक्टूबर 1931 ई. को हुआ था। इनका असली नाम रमेश सिंह मटियानी था जो 'रमेश सिंह मटियानी' से 'रमेश सिंह मटियानी शैलेश' होता हुआ 'शैलेश मटियानी' हो गया। 1951 में 20 साल की उम्र में उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। यही उनकी जीवन पर्यंत की आखिरी औपचारिक शिक्षा रह गयी। पढ़ाई-लिखाई में गंभीर इस बिन माँ-बाप के बच्चे का यही होना था, सो यही हुआ।

उम्र के बारहवें वर्ष में ही माँ-बाप दोनों का साया सिर से उठ गया था। किशोर वय की मासूमियत में ही बूचड़ का काम करना पड़ा। इतना ही नहीं 1950 के आस-पास लेखन शुरू करने पर उस मासूम को परिचितों से प्रोत्साहन के बजाय ताना मिला – "अरे, वह बिशनुवा जुवारी का बेटा और शेरसिंह बूचड़ का भतीजा लेखक बन रहा है। बाप-दादा उसके जुवा खेलते-खेलते ही खतम हो गए, चाचा भी बूचड़ और जुआरी ही हैं.... और वह लौंडा कविता-कहानियाँ लिख रहा है।"**3** लेकिन इस व्यवहार ने उनके निश्चय को और अधिक दृढ़ किया। उन्होंने यह साबित किया कि 'जुआरी का बेटा और बूचड़ का भतीजा' कविता-कहानियाँ सिर्फ लिख ही नहीं सकता, बल्कि ऐसा लिख सकता है कि बड़े-बड़ों को उसमें "संभावित दास्तावस्की"**4** दिखे।

शैलेश मटियानी 1952 ई. में पहाड़ से इलाहाबाद, मुजफ्फरनगर और दिल्ली होते हुए सागर किनारे के शहर बंबई पहुँच गए। ये जानकर ऐसा लगता है कि वे बहुत घुमक्कड़ रहे थे। लेकिन ऐसा नहीं है। ये समग्र चक्कर उन्होंने समाज और विशिष्ट व्यक्तियों - खासकर प्रतिष्ठित साहित्यकारों द्वारा अपमान और अस्वीकार की प्रतिक्रियास्वरूप और रोजगार की तलाश में लगाया। 1952 से 1957 ई. तक उनका जीवन बंबई जैसे शहर में उसके फुटपाथों पर काफी संघर्ष में बीता। बंबई प्रवास का उनका समय समाज के हाशिए और फुटपाथों पर पड़ी जिंदगी से साक्षात्कार का ही नहीं बल्कि खुद उस जिंदगी को जीने का भी समय रहा है। चाट हाऊस और ढाबों पर जूठे बर्तन धोता, ग्राहकों को चाय का ग्लास पहुँचाता, रेलवे स्टेशनों पर कुलीगीरी करता बीस-बाईस साल का युवक 'पर्वत से सागर तक' की संघर्षपूर्ण यात्रा करता हुआ सिर्फ सपनों में ही नहीं हक़ीक़त में भी साहित्य रच रहा था। धर्मयुग जैसी प्रतिष्ठित पत्रिका में इसी दौरान उस नवयुवक की रचनाएँ छप भी रही थीं।

बंबई में सर छुपाने कि जगह न होने के कारण फुटपाथ पर रातें गुजारीं। कई बार भोजन और सर छुपाने की जगह के लिए जानबूझकर हवालात भी गए। जानबूझकर रात में पुलिस की गश्त के वक़्त टहलने लगते और पुलिस उन्हें पकड़ कर ले जाती। वहाँ भूख की आग भी मिटती और सिर को छत भी मिल जाती। साथ में भत्ता भी मिलता। पैसे की कमाई के लिए उन्होंने अपना ख़ून भी बेंचा। ख़ून बेंचकर जो पैसे मिलते उसके भी कुछ हिस्से दलाल खा जाते। यहीं उनका बंबई के अपराध जगत से भी परिचय हुआ। अपराध जगत के इसी अनुभव को आधार बनाकर उन्होंने 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' उपन्यास की रचना की। और न जाने कितनी ही कहानियाँ लिखीं उन्होंने बंबई में प्राप्त अनुभव के आधार पर। इस संघर्षपूर्ण जीवन के समानान्तर वे लगातार साहित्य सृजन करते रहे। उन्होंने जीवन से चाहे जितने समझौते किया हों (वैसे जीवन में भी उन्होंने काफी कम ही समझौते किए), लेखन के साथ कोई समझौता नहीं किया। एक बार भूख की तीब्रता का अनुभव करते हुए बंबई में समुद्र के किनारे फेंका हुआ एक डब्बा उठाया, तो उसके भीतर पॉलीथीन में बंधा हुआ कुछ मिला। उसे खोलकर देखा तो उसमें मनुष्य का मल था। जीवन के ऐसे दारुण और गलीज़ यथार्थ को वे खुद देख चुके थे। उनकी रचनाओं में कोई ऐसे ही जीवन का ताप और तेज़ साँस नहीं लेता।

संघर्ष का यह दौर चल ही रहा था कि 1958 ई. में नीला मटियानी से उनका विवाह हो गया। परिवार और पारिवारिक जीवन के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा का परिचय मिलने लगा। लेकिन, संघर्षों ने उनका पीछा नहीं छोड़ा और न ही उन्होंने संघर्षों से भागने की कोशिश की; बल्कि जीवन पर्यंत संघर्षों को न्यौतते रहे। ऐसा लगता है जैसे जीवन के संघर्ष और उनका दारुण यथार्थ उन्हीं में अपनी सार्थकता और अस्तित्व खोज रहे हों। जब शैलेश मटियानी के लेखक का स्वाभिमान सामने आ गया, तो तमाम अभावों के बावजूद सुप्रीम कोर्ट तक केस भी लड़ते रहे। इस कारण काफी तनाव और कष्ट भी झेला। नियति ने मानो तय कर रखा हो इसे सबक सीखाना है। शैलेश मटियानी का जीवन देखकर ऐसा लगता है मानो इन्होंने भी तय कर रखा था आखिरी साँस तक संघर्ष करना है। 1992 में उनके छोटे बेटे की जो उनके हृदय के सबसे करीब था - हत्या हो गयी। इस करुण घटना ने उन्हें भीतर तक तोड़ दिया। लेकिन इससे भी वे लड़े। इस लड़ाई ने उन्हें मानसिक विक्षिप्तता की हालत में पहुँचा दिया। निराला और मुक्तिबोध के बाद एक और लेखक अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता और उसके लिए किए जा रहे संघर्षों के बीच के तनाव में फँसकर रह गया। बार-बार दौरे पड़ने लगे। इसी बीच उन्होंने अपने बेटे की हत्या वाली घटना को आधार बनाकर 'नदी किनारे का गाँव' कहानी लिखी। सबको लगा वे लौट रहे हैं, ठीक हो रहे हैं। लेकिन, नियति को कुछ और ही मंज़ूर था। लंबे समय से चल रही सिर की एक रहस्यमय बीमारी ने अंततः 24 अप्रैल 2001 को उनके शरीर से उनकी रूह को जुदा कर दिया। जाते-जाते वे छोड़ गए एक बड़ा उपन्यास और 'जुआरी के बेटे और बूचड़ के भतीजे की आत्म-कथा' लिखने की हसरत। ये हसरत आज भी उनके हर नए-पुराने पाठक के मन की कसक के रूप में ज़िंदा है।

शैलेश मटियानी एक प्रतिबद्ध लेखक थे। उनकी प्रतिबद्धता किसी विचार या विचारधारा के प्रति नहीं थी, बल्कि उनकी प्रतिबद्धता उन भूखे, नंगे, गरीब और गलीज़ ज़िंदगी जीते लोगों के प्रति थी जिनकी ज़िंदगी को उन्होंने बहुत करीब से देखा और महसूस किया था। सिर्फ इतना ही नहीं उन्होंने खुद ऐसी ज़िंदगी जी भी थी। किसी खास विचारधारा के प्रति प्रतिबद्धता कई बार एक तिकड़मी राजनीति में परिवर्तित होते हुए देखी गई है। इसी के सख़्त खिलाफ़ थे शैलेश मटियानी। किसी खास विचारधारा की प्रतिबद्धता से ज्यादा बड़ी है ये प्रतिबद्धता और इसीलिए इसके व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण इस्तेमाल की ज्यादा संभावनाएँ भी बनती हैं। ऐसा कभी नहीं होने दिया शैलेश मटियानी ने और अंततः वे प्रतिबद्ध ही रहे। किसी खास विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध लेखकों की रचनाएँ कई बार इसी कारण अपनी स्वाभाविक परिणति को प्राप्त नहीं हो पातीं और रचना से गुजरते हुए लगातार एक बनावटीपन का एहसास पीछा करता रहता है पाठक का। ऐसा नहीं है कि किसी खास विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध लेखकों ने कभी सहज और स्वाभाविक रचनाएँ दी ही नहीं। कई बार तो ऐसा भी हुआ है कि किसी खास विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध लेखकों ने विचारधारा के प्रभाव से हीन बड़ी सहज, स्वाभाविक और कोमल रचनाएँ दीं। साथ ही ऐसी भी रचनाओं की कमी नहीं है जो विचारधारा के प्रभाव में लिखी गई हैं और रचनात्मकता के मानदंदों पर भी उत्कृष्ट हैं। ऐसी रचनाएँ विचारधारा को आत्मसात कर लेती हैं और उसका बोझ ढोती हुई-सी नहीं लगतीं। बहरहाल शैलेश मटियानी की रचनाओं में किसी तरह के कौशल और चालाकी की जगह संवेदना की एक सहज तान सुनाई पड़ती है और पाठक को सहज ही उससे एक जुड़ाव का एहसास होता है। 'अर्धांगिनी' कहानी इस प्रतिबद्धता के साथ-साथ पर्वतीय पृष्ठभूमि और घर-परिवार से सहज संवेदनात्मक और प्रगाढ़ जुड़ाव का ही प्रतिफलन है।

शैलेश मटियानी की रचनात्मकता के दो छोर रहे हैं – एक, कुमायूँ की पर्वतीय पृष्ठभूमि और दूसरा, बंबई का संघर्ष भरा जीवन। इतना विपुल सर्जनात्मक साहित्य-सृजन करनेवाले और पर्वत से बाहर घोर संघर्षपूर्ण जीवन जीनेवाले शैलेश मटियानी अपने सृजन के आधार के रूप में उसी पर्वतीय पृष्ठभूमि और अपनी दादी को याद करते हुए कहते हैं – "...मेरे लेखक-जीवन की नींव में दादी के मुख से निकली लोक-कथाओं की ईंटें पड़ी हुई हैं।"**5** जीवन की दूसरी तल्ख़ सचाइयों से वास्ता बंबई में हुआ। यहीं और इन्हीं संघर्षों से उन्हें एक बड़ा विज़न मिला। इसी विज़न ने उन्हें दबे-कुचले, ग़रीब-बेबस शोषितों के प्रति प्रतिबद्धता का पाठ पढ़ाया। अपनी रचना-प्रक्रिया को वे इन्हीं दो परिच्छेदों में बांटकर देखते हैं – "एक ओर मेरा अभीष्ट कुमायूँ के जनजीवन, वहाँ की संस्कृति और लोक-साहित्य को, उनके अस्तित्व और उनकी आत्मा के अनुरूप शब्द शिल्प देकर, उन्हें हिन्दी साहित्य के विशाल सागर तक ले आना है, जैसे पहाड़ी नदियों को उनके बहाव के अनुकूल धरती का ढलाव सागर की आलिंगनातुर-बाँहों तक ले जाता है- तो दूसरी ओर मैं बंबई की फुटपाथों, कमाठीपुरा के कोठों में चिलबिलाने-बिलखनेवाली बोटियों और गणपत-रामन्ना भाऊ तथा वस्ताद-पोपटों की अपनी बिरादरी के प्रति अपने वैयक्तिक और साहित्यिक-दायित्वों के साथ बंधा हुआ हूँ, जिनके टुकड़े मैंने खाए हैं, जिनसे प्यार मैंने पाया है, जिनसे जीवन जीने की कला मैंने सीखी है।"**6** इस संघर्षपूर्ण जीवन के बावजूद उनकी स्पष्ट मान्यता है कि उनके "साहित्य-सृजन की आराध्या धरती-पार्वती ही है" 7 . इसी पर्वतीय पृष्ठभूमि में लिखी गयी एक अद्भुत कहानी है 'अर्धांगिनी'।

अर्धांगिनी एक प्रेम कहानी है। पर प्रेम कहानी के पैटर्न से अलग हटकर है। यह दाम्पत्य-प्रेम की महत्वपूर्ण कहानी है। दाम्पत्य-कलह पर तो काफी कहानियाँ मिल जाएँगी, पर दाम्पत्य-प्रेम पर कहानियाँ मिलनी मुश्किल हैं। प्रेम कहानियों के नाम पर या तो अविवाहित जोड़ों की कहानियाँ मिलती हैं या विवाहेत्तर प्रेम की त्रिकोणात्मक कहानियाँ। विवाह होते ही प्रेम खत्म। अतः दाम्पत्य-प्रेम कहानी का विषय कैसे हो सकता है? ऐसा लगता है जैसे प्रेम, सम्बन्धों के धागों को तोड़ने का पर्याय हो। हर बंधन से मुक्ति ही प्रेम हो। प्रेम को आधार बनाकर लिखी गई समकालीन कहानियों के बारे में शैलेश मटियानी ने कहा है कि समकालीन हिन्दी कहानी में "त्रिकोणात्मक कहानियाँ ही अधिक मिलेंगी। दाम्पत्य-जीवन की प्रेम कहानियाँ कम मिलेंगी। यहाँ पति-पत्नी के बीच प्रेम की कहानी या तो विवाह के पश्चात् लिखने की वस्तु नहीं रह जाती और विवाह के बाद के दाम्पत्य-प्रेम को प्रेम-कहानी में नहीं गिना जाता। मेरे मतानुसार प्रेम-कहानी का मामला त्रिकोणात्मक हो, या दाम्पत्य मूलक, कहानी को वहाँ तक जाना चाहिये, जहाँ तक कि प्रेम के सवाल जाते हैं। जहाँ तक कि स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम के तंतु जाते हैं; प्रेम का ताना-बाना केवल दाम्पत्य सूत्र में बंधने या विवाह विच्छेद तक ही नहीं जाता।"**8** अर्धांगिनी वहाँ तक पहुँचती है जहाँ तक प्रेम के सवाल जाते हैं। दाम्पत्य-प्रेम पर लिखी कहानी खोजी जाय तो बहुत कम कहानियाँ मिलेंगी और जो मिलेगी वह अर्धांगिनी होगी। हिन्दी की सर्वोत्कृष्ट प्रेम कहानियों में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण सर्वोत्कृष्ट कहानियों में एक। यह कहानी प्रेम के उदात्त और रोमांच तक का ही नहीं, प्रकृति की सम्पूर्ण जीवंतता और उसके वैभव में "सृष्टि के साक्षात्कार"**[9]** तक का सफर तय करती है।

कहानी की कथा-वस्तु बस इतनी है कि कहानी का नायक नैन सिंह - जो सेना में सूबेदार है - दो-चार साल बाद कुछ दिनों की छुट्टी पर घर लौटता है। इसीलिए प्रभाकर श्रोत्रिय इसे "एक कथाहीन कहानी"**[10]** मानते हैं। कथाहीन कहानी का सर्वोत्तम उदाहरण उनकी 'छिद्दा पहलवान वाली गली' कहानी है। अपनी पत्नी द्वारा दुत्कारे जाने पर कहानी का असहाय, डरपोक और कायर नायक रामभरोसे अपनी गाभन भैंस हाँक ले जानेवाले छिद्दा पहलवान को कल्पना में ही मार गिराता है। बहरहाल घर पहुँचने की खुशी और इंतज़ार में नैन सिंह को सफर लंबा लगने लगता है। मिलनेवाली खुशी का इंतज़ार ऐसा ही होता है। उसकी मनःस्थितियों, उसकी बेचैनियों के कैनवास पर गाँव, घर, जंगल, पहाड़, नदियाँ और सबसे अधिक सूबेदारनी ताज़े और गाढ़े

रंग की तरह उभर आती है। अतः स्पष्ट है कि यह कहानी यथार्थ से अधिक स्मृति और कल्पना में रूपाकार ग्रहण करती है। वैसे भी प्रेम से अधिक मोहक होती हैं प्रेम की स्मृतियाँ। लेकिन इस कहानी में प्रेम का यथार्थ भी उतना ही मोहक है, जितनी उसकी स्मृतियाँ। स्मृतियाँ यथार्थ की अभिव्यक्ति में सहायक हैं तो यथार्थ स्मृतियों की अभिव्यक्ति में। प्रभाकर श्रोत्रिय कहानी की इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि "यह भाव को यथार्थ से और यथार्थ को भाव से परस्पर पुष्ट करती है पूरी कहानी अनुभव और यथार्थ के...सटीक तानों-बानों से गूँथी हुई है...।"**[11]** स्पष्ट है कि स्मृति और यथार्थ का संतुलन रचती है यह कहानी।

कहानी की शुरुआत ही एक बेचैनी से होती है। टनकपुर में नैन सिंह की आखिरी बस छूट जाने के बाद संध्या होते-होते घर पहुँचने और सरप्राइज़ भिजिट की हसरत हसरत ही रह जाती है। सामान की तरफ देखने पर ऐसा लगता है मानो वह भी पूछ रहा हो कि "कितनी देर है चल पड़ने में?"**[12]** सामान का यह पूछना उस बेचैनी के घनत्व का एहसास कराता है। नैन सिंह अपने एक रिश्तेदार खीम सिंह के साथ हो लेते हैं, जो उन निराशा के क्षणों में अचानक ट्रक लेकर प्रकट होता है। फिर शुरू होती है यात्रा जो दो स्तरों पर चलती है – एक, ट्रक से पहाड़ी रास्ते की और दूसरी, स्मृतियों और कल्पनाओं में प्रेम और प्रकृति की। कहानी के कुछ दूर तक चलने के बाद पहले स्तर की यात्रा तो खत्म हो जाती है, लेकिन दूसरे स्तर की यात्रा कहानी में अंत तक चलती है और पाठक को इसी यात्रा पर छोड़ भी जाती है। बल्कि यूँ कहें कि कहानी अब खुद पाठक की स्मृतियों और कल्पनाओं की एक अंतहीन यात्रा पर निकल पड़ती है।

नैन सिंह की स्मृति और कल्पना का केंद्र उसकी पत्नी सूबेदारनी है। लौटने के दो-तीन दिन पहले नैन सिंह पत्नी को लेकर गहरे जंगल में चले जाते हैं। पत्नी भी सज-सँवर कर उनके साथ हो लेती है। वे जंगल में जाकर अपने कैमरे से विभिन्न पोज़ में उसकी कई तस्वीरें लेते हैं और न्यौली (एक प्रकार विरह गीत) गवाकर अपने टेपरिकॉर्डर में टेप करते हैं। स्मृति में सुरक्षित रख लेना चाहते हैं सूबेदारनी को। यह स्त्री कहानी पूरा होते-होते प्रकृति के वैभव का एहसास कराने लगती है। कहानी प्रकृति और प्रेम की संयुक्त संवेदना की एक इकाई बन जाती है। नैन सिंह जब लौट रहा होता है तो उसे लगता है "दूर खड़ा भराड़ी का जंगल 'याद रखना, भूलना मत' पुकारता-सा आगे को आ रहा है और प्रकृति सूबेरदानी की ही भाँति घाघरा फैलाये बैठी मालूम पड़ती है।"**[13]** प्रकृति और पत्नी जैसे नैन सिंह के लिए समानधर्मा हुई जाती हैं। पत्नी का स्पर्श चाहे वह स्मृति में हो अथवा हक़ीक़त में विशेष तरह की अनुभूति कराता है। नैन सिंह की इस अनुभूति को लेखक ने बड़े काव्यात्मक ढंग से व्यक्त किया है – "...एक तेरा स्पर्श होता है कि शरीर में वनस्पतियाँ-सी फूट पड़ती हैं।"**[14]** सूबेदारनी भी कम प्रेम नहीं करती। उसकी स्मृति में भी प्रेम के तन्तु उतने ही कुलबुलाते हैं – "...सूबेदार के साथ बीते एक-एक दिन को घुप्प अँधेरे में बिखेर देने को मन करता है और टॉर्च हाथ में लेकर ढूँढने को।"**[15]** दोनों का एक-दूसरे के लिए यह प्रेम अद्भुत है। इस प्रेम के बिना कितना अधूरा होता दोनों का संसार। प्रेम पर जो अगाध विश्वास है शैलेश मटियानी का वह इस कथन में व्यक्त होता है – "क्या रखा है स्साले आदमी की जिंदगी में, अगर कहीं पाँवों से लेकर सिर से ऊपर तक का, गहरे तालाब जैसा प्रेम नहीं रखा है।"**[16]** कहानी में संभवतः इसी वैभवपूर्ण प्रेम की उपस्थिति के कारण राजेंद्र यादव ने कहा होगा – " 'अर्धांगिनी' में स्त्री पुरुष के बीच का जो डेलिकेट रिलेशन है उसे उन्होंने बहुत लिरिकल ढंग से रखा है।"**[17]** प्रेम की यही संगीतात्मक और संवेदनात्मक उपस्थिति इस कहानी को महत्वपूर्ण बनती है।

नैन सिंह पत्नी और घर की याद में यात्रा करता हुआ आता है और जैसे-जैसे जाने के दिन नज़दीक आने लगते हैं वैसे-वैसे भावी विरह की व्यथा साँस लेने लगती है। कहानी के वर्तमान में उसके यथार्थ के समानान्तर भी स्मृति और कल्पना का बड़ा अंश मौजूद है। यह कहानी एक ओर निकट भविष्य के मिलन की स्मृतिकथा है, तो दूसरी ओर निकट भविष्य के विरह की स्मृतिकथा भी। स्मृति भी ऐसी कि कल्पना का सहारा लेकर दूर अतीत से वर्तमान को छूती हुई भविष्य में जाती है, तो आंचलिक संस्कृति, स्थानीय परिवेश, मानवीय संवेदना और प्रकृति में भी विस्तार पाती है। आंचलिकता के ढेर सारे तत्व इस कहानी में मौजूद हैं। इसी कहानी में नहीं बल्कि शैलेश मटियानी के समग्र रचना-संसार में आंचलिकता के तत्व सशक्त ढंग से मिलते हैं। कुमायूँनी परिवेश की कहानियों का एक संकलन भी है 'बर्फ की चट्टानें', जो 1990 में सचिन प्रकाशन से छपा था। इस संग्रह में अर्धांगिनी कहानी को भी संकलित किया गया है। शैलेश मटियानी की रचनाओं में आंचलिकता के मसले पर राजेंद्र यादव तो यहाँ तक कहते हैं कि "...शैलेश मटियानी रेणु से पहले आदमी हैं जिन्होंने बहुत सफलता पूर्वक आंचलिक भाषा व आंचलिक संस्कृति का प्रयोग किया। जब रेणु का कहीं पता नहीं था तब उनका 'बोरीवली से बोरीबंदर तक' जैसा उपन्यास आ चुका था। पहाड़ के जीवन पर उनकी अद्भुत कहानियाँ आ चुकी हैं जो वहाँ की जीवन और वहाँ की संस्कृति और भाषा निरूपित करती थी। कई और रचनाएँ आ चुकी थीं। उनमें रेणु से कम शक्ति नहीं है। उनमें विविधता ज्यादा है।"**[18]** अतः राजेंद्र यादव समेत कई विद्वानों का मानना है कि साहित्य में आंचलिकता लाने का जो श्रेय शैलेश मटियानी को मिलना चाहिए था वो उन्हें नहीं मिला। विवेच्य कहानी में आंचलिकता के तत्व तो हैं ही साथ ही शाश्वत मानवीय संवेदनाओं की एक मुकम्मल तस्वीर भी है।

आर्धांगिनी कहानी में स्त्री की जो वैभवमय उपस्थिति है वह अन्यत्र दुर्लभ है। नैन सिंह को सबसे अधिक अपनी पत्नी की याद आती है। पर यह कहानी सिर्फ पत्नी की स्मृति की कहानी नहीं है। पत्नी के साथ-साथ माँ भी उपस्थित है, चंपावत के ढाबे की भगवती भी उपस्थित है, तो इस मिलन के फल और तीसरे संतान के रूप में कन्या संतति की इच्छा भी उपस्थित है। नैन सिंह को चंपावत के ढाबे की भगवती की भुवनमोहिनी आवाज़ और हँसी मंजीरे-सी बजती हुई प्रतीत होती है। नायक के अनुभवों के हवाले से ही लेखक कहते हैं – "औरतें सब लगभग समान हुईं और लगभग सभी माता-बहन-बेटी इत्यादि, लेकिन किसी की कोई बात ध्यान में रह गई, किसी की कोई।...फोटू कैमरामैन हो जाने वाली ठहरी यह औरत ...आपके एक-एक नैन-नक्श को पकड़ती, प्रकट करती...।"**[19]** कन्या संतति की इच्छा सिर्फ नायक को ही नहीं है उसके बेटे भिभुवा को भी एक बहन की इच्छा है। इसीलिए तो नायक सोचता है "सूबेदारनी साहिबा की प्रतिच्छवि और उतर किसमें पाएगी? आधी सृष्टि उसी के पक्ष में है।"**[20]** नायक सेना में सूबेदार है। सुदूर पहाड़ी गाँव के संस्कार हैं। ऐसा गाँव जहाँ ठीक से सड़क भी नहीं पहुँचती। अतः यह सहज ही अंदाज़ा लगाया जा सकता है कि वह कितना शिक्षित होगा। लेकिन इसके बावजूद वह कन्या संतति की प्रगाढ़ अभिलाषा पाले हुए है। इसे आज कन्या भ्रूण-हत्या के संदर्भ में देखा जाय तो एक रोचक बात उभर कर आती है। इससे यह मिथ टूटता है कि ये कुप्रथा सुदूर गाँवों के अनपढ़ और गँवार लोगों में प्रचलित है। तथाकथित पढ़े-लिखे लोग इस कुप्रथा के लिए अनपढ़ और गँवार लोगों को जिम्मेदार मान लेते हैं। उनकी यह मान्यता खंडित होती है। बल्कि कन्या संतति का सम्मान कैसे किया जाय ये तथाकथित पढ़े-लिखे शहरी लोगों को नैन सिंह सूबेदार और उसके परिवार से सीखने की जरूरत है। उसकी स्पष्ट मान्यता है – "स्त्री तत्व भी क्या चीज़ हुआ। सारे ब्रह्मांड में व्याप्त ठहरा। कोई ओर-छोर थोड़े हुआ इनकी ममता का। अपरंपार रचना हुई।"**[21]** स्पष्ट है कि इस कहानी का 'अर्धांगिनी' शीर्षक सिर्फ सूबेदारनी में अपनी सार्थकता नहीं पाता, बल्कि समूची सृष्टि की अर्धांगिनी के रूप में स्त्री तत्व को देखने-समझने की कोशिश करता है।

पूरी कहानी में स्त्री को देवी के रूप में देखने का आभास मिलता है। प्रेम अपनी ऊँचाइयों और सर्वाधिक उदात्त क्षणों में आध्यात्म से भी जुड़ता है, शायद यह इसी का परिणाम हो। लेकिन कहानी में एक जगह स्त्री को देवी से ऊपर भी बताया गया है। नैन सिंह को सूबेदारनी शिकार करने से माना करती है क्योंकि हत्या उसे अच्छी नहीं लगती है। परंतु, देवी मइया को बकरे की बलि चढ़ाई जाती है तो वो नहीं कहतीं कि मुझे अच्छी नहीं लगती हत्या। नायक को इसी समय याद आती है हथियारों से भरे हाथों वाली कालिका मइया की प्रतिमा। यहाँ स्पष्ट है कि मनुष्यत्व और स्त्रीत्व को देवत्व से ऊपर प्रतिष्ठित करते हैं लेखक।

हर कहानी की अपनी एक पृष्ठभूमि होती है सो इस कहानी की भी है। इस कहानी की पृष्ठभूमि में वही मुकदमा है जिसे शैलेश मटियानी ने सुप्रीम कोर्ट तक लड़ा। इसकी थोड़ी-सी चर्चा ऊपर भी हो चुकी है। जैसा कि बताया जा चुका है कि ये उनके जीवन के सबसे तनाव भरे दिन थे। यह लड़ाई लेखकीय हैसियत और अस्मिता की लड़ाई थी। जिस जज के पक्ष लेने के करण उन्होंने ये मुकदमा दायर किया था उसी ने उनकी लेखकीय हैसियत और अस्मिता का मजाक उड़ाया। यह एक ऐसे लेखक के साथ हुआ था जो जीवन पर्यंत एक लेखक की हैसियत और उसकी अस्मिता के लिए संघर्ष करता रहा। प्रभाकर श्रोत्रिय के पूछने पर उन्होंने ये बातें बतायीं। इस घटना से उन्हें गंभीर कष्ट हुआ। इसने उन्हें काफी आहत किया। अकेले में आँसू भी उमड़े। अकेले में उमड़े इन्हीं आँसुओं ने ही उन्हें हृदयाघात या ब्रेन हैमरेज से बचाया।**[22]** 'अर्धांगिनी' और 'छाक' जैसी कोमल और संवेदनशील कहानियाँ इन्हीं दिनों लिखी गयीं जबकि ये उनके सबसे अधिक संघर्ष और तनाव के दिन थे। बाहरी जीवन के संघर्ष और तनाव ने विवेच्य कहानी में रचनात्मक परिणति पायी। यह रचना विरेचन की प्रक्रिया में लिखी गयी होगी। प्रभाकर श्रोत्रिय इस रचनात्मक परिणति के बारे में ठीक ही कहते हैं – "...प्रत्यक्षानुभव की सारी उत्तेजना जो अपने मूल में उपस्थित होकर घृणा, द्वेष, क्रोध, वक्तत्व आदि का सतहीपन धारण कर लेती, कहानी के इस स्वरूप में मानवीय सम्बन्धों की संवेदना और गहरी आश्वस्ति में बदल गई - उसने यथार्थ क्षति की रचना में पूर्ति कर दी और जीवन को लयात्मक संपूर्णता और अखंड सत्ता में बदल दिया, ताकि उसका अधूरा चित्र ही सम्पूर्ण चित्र न हो जाए।"**[23]**

यह कहानी शैलेश मटियानी की ही नहीं, बल्कि हिन्दी कहानी की भी महत्वपूर्ण कहानी है। इस कहानी में प्रेम और प्रकृति का अद्वैत है। कहानी का शिल्प कुछ इस तरह का है कि कहानी का अधिकांश स्मृति और कल्पना का हिस्सा है। कहानी यथार्थ से स्मृति फिर स्मृति से यथार्थ में आती-जाती सर्पीली है। कहानी जब यथार्थ में होती है, तब भी स्मृति और कल्पना का हिस्सा अधिक होता है। प्रभाकर श्रोत्रिय ठीक ही कहते हैं – "काफी दूर तक कहानी यथार्थ को अलग तरह से झेलते हुए मुख्यतः स्मृति और कल्पना में जारी रहती है और बाद में यथार्थ में परिणत हो जाती है।" **24** यह लेखक का कौशल ही है कि संगीतात्मक, तरल और काव्यमय भाषा में रची गई यह कहानी एक सहज स्वाभाविकता अर्जित करती है और एक सामान्य दाम्पत्य-प्रेम प्रेम की ऐसी ऊँचाइयाँ प्राप्त करता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

[1] http://kramashah.blogspot.in/2008/04/blog-post_24.html

[2] पंत, कैलाशचन्द्र, शैलेश मटियानी की वैचारिक आधार भूमि (लेख), सृजन यात्रा : तीन शैलेश मटियानी, कैलाशचन्द्र पंत (संपा.), मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण : 2002, पृ. सं. : 15

[3] मटियानी, शैलेश, मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया (लेख), सृजन यात्रा : तीन शैलेश मटियानी, कैलाशचन्द्र पंत (संपा.), मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण : 2002, पृ. सं. : 98-99

[4] मेहता, श्री नरेश, यात्रा एक तापस की (लेख), अक्षरा, अंक : 56, विजय कुमार देव (संपा.), नवंबर-दिसंबर : 2001, पृ. सं. : 12

[5] मटियानी, शैलेश, मैं और मेरी रचना-प्रक्रिया (लेख), सृजन यात्रा : तीन शैलेश मटियानी, कैलाशचन्द्र पंत (संपा.), मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण : 2002, पृ. सं. : 93

[6] वही, पृ. सं. : 112

[7] वही, पृ. सं. : 121

[8] मटियानी, शैलेश, प्रेम-कहानी के तन्तु (लेख), अक्षरा, अंक : 44, विजय कुमार देव (संपा.), अप्रैल-जून : 1999, पृ. सं. : 11

[9] वही, पृ. सं. : 14

[10] श्रोत्रिय, प्रभाकर, 'अर्धांगिनी' : स्मृति और यथार्थ की सहयात्रा (लेख), सृजन यात्रा : तीन शैलेश मटियानी, कैलाशचन्द्र पंत (संपा.), मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण : 2002, पृ. सं. : 63

[11] वही, पृ. सं. : 64

[12] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[13] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[14] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[15] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[16] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[17] http://kramashah.blogspot.in/2008/04/blog-post_24.html

[18] http://kramashah.blogspot.in/2008/04/blog-post_24.html

[19] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[20] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm

[21] http://hindisamay.com/kahani/Ardhangini.htm
[22] श्रोत्रिय, प्रभाकर, 'अर्धांगिनी' : स्मृति और यथार्थ की सहयात्रा (लेख), सृजन यात्रा : तीन शैलेश मटियानी, कैलाशचन्द्र पंत (संपा.), मध्य प्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दी भवन, भोपाल, प्रथम संस्करण : 2002, पृ. सं. : 65
[23] वही, पृ. सं. : 66
[24] वही, पृ. सं. : 68